ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

आर्य समाज के प्रणेता दयानन्द सरस्वती का वैचारिक चिन्तन

KEY WORDS: वैदिक सभ्यता, सनातन, स्वदेशी, पुर्नजागरण, आर्शपाठ विधि

ज्योत्सना शोधार्थी, इतिहास विभाग अध्यक्ष, एस.आर.टी. परिसर हेनबग विष्वविद्यालय श्रीनगर

प्रो.जे.सी. जोशी प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्ष, इतिहास विभाग एस.आर.टी. परिसर हेनबग विष्वविद्यालय श्रीनगर

ABSTRACT

सुधारक के रूप मे दयानन्द आधुनिक भारतीय समाज के निर्माता के रूप में अग्रणी कहे जा सकते हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में दयानन्द आधुनिक भारत के ऐसे मार्ग दर्षक रहे हैं, जिन्होंने कर्मकाण्ड की उलझी राहों के बीच भारतीयों के लिए ईष्वर की विषुद्ध भक्ति तथा मानवता की सेवा का मार्ग प्रषस्त किया। राष्ट्रीयता तथा समाज सुधार का रचनात्मक समन्वय प्रस्तुत कर दयानन्द सरस्वती ने जिस प्रकार जीर्ण हिन्दू समाज के समग्र नवीनीकरण का लक्ष्य प्राप्त किया एवं भविश्य के विकास का आरम्भ किया, उसे एक महान उपलब्धि मानकर महान इतिहासकार बासम ने दयानन्द सरस्वती को भारतीय लूथर की संज्ञा देते हुए उन्हें समान सुधार तथा राष्ट्रवाद का रचनात्मक समन्वयकर्ता बताया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824–1883) उन्नीसवीं षताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रारम्भ हुए भारतीय पुर्नजागरण युग मे महान युगनिर्माताओं में से एक थे। वे केवल एक सुधारक मात्र नही थे जिन्होनें भारतीय समाज व धार्मिक सुधार का एक प्रबल आंदोलन प्रारम्भ किया वरन्, एक प्रगतिवादी चिन्तक भी थे। वह प्रथम भारतीय हैं, जिन्होनें आधुनिक युग में 'सब के लिए समान अवसर और मनुश्यो की समानता' के सिद्धांतो को प्रतिपादित किया। उनके ये सिद्धांत पाश्चात्य विचारों से प्रभावित नही थे, उन्होनें जो भी मन्तव्य प्रतिपादित किए वे या तो उनके मौलिक चिन्तन का परिणाम थे या फिर उनके वेद तथा अन्य प्राचीन हिन्दू धर्मग्रंथों की तार्किक एवं नवीन व्याख्या का परिणाम थे।

दयानन्द सरस्वती ने एक चिन्तक के रूप में भौतिक संसार के अस्तित्व को माया का प्रपंच नही माना, उन्होनें भौतिक जगत की स्वतन्त्र वास्तविकता को स्वीकार किया तथा इस बात पर बल दिया कि वास्तविक धर्म कभी भी जीवन से पलायन का संदेष नही देता, बल्कि सामाजिक जीवन में हर स्तर पर कर्म करने की प्रेरणा तथा लौकिक जीवन को सर्मद्ध बनाने हेतु प्रोत्साहन देता है वैदिक धर्म की पुर्नव्याख्या द्वारा भारतीयों को तात्कालीन निराषा एंव निश्क्रियता से उबारकर उनमें अपने अतीत के प्रति गौरव की भावना जाग्रत करना एंव राष्ट्रीय चेतना को गति षीलता देना दयानन्द सरस्वती का उदेष्य था।

उन्नीसवीं सदी के धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन से भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का एक नया युग प्रारंभ होता है। इस समय समाज को सती प्रथा, जाति प्रथा, बाल विवाह प्रथा, मूर्ति पूजा, छुआछूत एंव बहुदेववाद आादि बुराइयो ने दूशित कर रखा था। जबकि विभिन्न आडम्बरो के कारण धर्म भी संकीर्ण होता जा रहा था। इस समय ईसाई मिषनरियों द्वारा किये जा रहे प्रचार के कारण लोगों का ध्यान ईसाई धर्म की तरफ आकृश्ट हो रहा था तथा वे हिन्दू धर्म के प्रति उदासीन होते जा रहे थे। इस समय देष में पुर्नजागरण हुआ तथा विभिन्न सुधारको ने देष की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति में अनेक सुधार किये, जिसके कारण आधुनिक भारत के निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

नवयुग की प्रवृत्तियाँ यूरोप में शुरू हुई पर धीरे धीरे वे अन्य देषों में भी फैल गई। भारत भी इनके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। अंग्रजों के संपर्क से इस प्रक्रिया में सहायता मिली। पर यह नहीं समझना चाहिए कि अंग्रजी प्रभुत्व के आभाव में नये युग की प्रवृत्तियाँ भारत में प्रारंभ नहीं हो पाती पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अंग्रजी शासन द्वारा भारत में नववर्श का सूत्रपात होने में अनेक प्रकार से सहायता मिली।

ब्रिटिष युग में सम्पूर्ण भारत एक शासन की अधीनता में आ गया। औरंगजैब के बाद मुगल साम्राज्य के निर्बल पडनें पर भारत में जो बहुत छोटे–बडे राज्य स्थापित हो गये थे, उन सब की स्वतंत्र सत्ता का अंत कर अंग्रजों ने इस देष पर एक शक्तिषाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना की, इससे भारतीय राष्ट्रीयता और राजनीतिक एकता के विकास में बहुत सहायता मिली थी।

अंग्रेजी शासन के समय भारत में कोई ऐसे विदेषी आक्रमण नहीं हुए जो इस देष की शान्ति और व्यवस्था को भंग कर सकते थे। बीसवीं सदी के दो महायुद्धों के अवसर पर भी भारत विदेषी सेनाओं द्वारा आक्रान्त होने से बचा रहा, इस कारण इस देष को शान्ति पूर्वक अपनी आद्यौगिक व राष्ट्रीय उन्नति करने का सम्पूर्ण अवसर हाथ लग गया। अंग्रेजी शासन द्वारा भारत में अंग्रेजी भाषा का भी प्रवेष हुआ। इससे उन सब ज्ञान–विज्ञानों व विचारों को स्त्रोत भारत के लिए खुल गया, जिनका विकास इस काल में इंग्लैण्ड व यूरोप के अन्य देषों में हो रहा था। इससे न केवल भारत की वैज्ञानिक तथा आद्योगिक उन्नति में सहायता मिली अपितु राष्ट्रीयता, लोकतन्त्रवाद और समाजवाद आदि के नये विचार भी इस देष में प्रसारित हुए।

नवयुग का सूत्रपात करने वाले विविध आंदोलन व कार्य भारत में एक समय में ही शुरू हुए और एक साथ ही निरन्तर उन्नति करने लगे, जिन्होने इस देष में नव जीवन का संचार किया भारत की बहुसंख्य जनता हिन्दू धर्म की अनुयायी है तथा उन्नीसवी सदी में इस धर्म में अनेक प्रकार की बुराइयाँ उत्पन्न हो चुकी थी, जिसके कारण हिन्दू धर्म बहुत निर्बल व विकृत हो गया था। इसी सदी में कुछ सुधारक ऐसे भी हुए जिनका कथन था कि हिन्दू धर्म में जो विविध बुराइयां तथा अंधविष्वास प्रचलित हैं, वे असली व सनातन धर्म के प्रतिकूल हैं। इन सुधारकों में स्वामी दयानन्द सबसे मुख्य थे, वे न अंग्रजी जानते थे, और न ही किसी आधुनिक षिक्षणालय में उन्होंने षिक्षा प्राप्त की थी। वे एक पण्डित थे, जिनकी षिक्षा वेद शास्त्रों तक ही सीमित थी। इन्हें पढकर उन्होने अनुभव किया कि समाज में छूत–अछूत और ऊँच नीच का भेदभाव धर्मविरूद्ध है। स्त्रियों को पुरूश के समान ही षिक्षा दी जानी चाहिए। बाल–विवाह अनुचित है, विषेश परिस्थितियों में विधवा विवाह भी शास्त्रयसंभव है। ईष्वर एक है वह निराकार है। अतः उसकी मूर्ति नही बनाई जा सकती, जिन्हें हिन्दू लोग ईष्वर का अवतार मानते हैं, वस्तुतः वे ऐसे महापुरूष थे जिनका हमें आदर करना चाहिए पर ईष्वर के समान उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए।

अपने विचारों का प्रसार करने के लिए स्वामी दयानन्द नें आर्यसमाज की स्थापना की और वेदों की षिक्षा का सर्वसाधारण जनता में प्रचार करने के लिए वैदिक संहिताओं का हिंदी में अनुवाद किया। दयानन्द केवल धर्म सुधारक ही नहीं थे, भारत की राजनीतिक दुर्दषा व पराधीनता का भी उन्होंने तीव्र रूप से अनुभव किया, विदेषी शासन का अंत कर भारत में 'स्वराज' की स्थापना होनी चाहिए, यह आवाज सबसे पहले दयानन्द ने ही बुलन्द की उन्होनें यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया कि 'सुषासन' कभी स्वषासन का स्थान नहीं ले सकता। दयानन्द तथा उनके अनुयायियों ने ज्ञान के प्रसार द्वारा अज्ञान जनित कुरीतियों को दूर करने के लिए विषिष्ट प्रयत्न किये। आर्य समाज द्वारा सभी वर्गों में षिक्षा का प्रसार कार्य किया गया। षिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज अग्रणी रहा तथा इसका व्यापक शैक्षिक कार्य राष्ट्रीय जीवन के प्रति सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा।

स्वामी दयानन्द के धर्म संबंधी विचार बुद्धि की कसौटी पर खरे उतरते हैं। स्वामी जी के अनुसार जो कुछ सत्य है वही धर्म है "जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही लिखना, कहना और मानना सत्य कहलाता है। सत्य को जानने के लिए स्वामी दयानन्द के अनुसार वेद ही प्रमाण है। जो कुछ वेद के अनुसार है वह सत्य है और जो वेद के विरूद्ध है वह असत्य है।" उनके अनुसार धर्म अनेक नहीं हो सकते चूँकि ईष्वर एक है और अतः धर्म भी एक है। उन्होंने धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट रूप से बताये हैं "मैं ऐसे धर्म में विष्वास करता हूँ जो सार्वभौम है और जिसके सिद्धान्त सभी मनुश्य सत्य रूप में स्वीकार करते हैं।

महर्षि दयानन्द वेद शास्त्रों के एक प्रकाण्ड पण्डित, समाज सुधारक और आर्य समाज कि प्रर्वतक के रूप में विष्व प्रसिद्ध हैं, किन्तु षिक्षा पद्धति में भी उनका विषिष्ट योगदान रहा है। वे देषभक्त, मानवहितैशी, दूरदर्षी और षिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न करने वाले अदभूत षिक्षाषास्त्री थे। उन्होनें जिस दूरदर्षिता से वैदिक या आर्य षिक्षा पद्धति की योजना प्रस्तुत की थी वह अद्वितीय है। वह इस युग के प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने 'सबके लिए अनिवार्य षिक्षा' का विधान किया और 'मानव मात्र को षिक्षा का समान अधिकार' की क्रान्तिकारी घोषणा करके उसको क्रियान्वित कर दिखाया। उन्होनें सबसे पहले सार्वजनिक रूप से सत्यार्थ प्रकाष में स्वदेषीयता और स्वदेषीय राज्य के श्रेष्ठ होने की घोषणा कर पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति का विचार सर्वप्रथम दिया था और षिक्षा में विदेषी विद्वानों के प्रति बढते अनावष्यक मोह से देषवासियों को सावधान किया था।

भारतीयों को स्वयं चक्रवर्ती राजा बनने के लिए प्रोत्साहित किया था, जिसे उस समय अंग्रेजी शासन के प्रति खुला विरोध कहा जा सकता है। गुजरातीभाषी होते हुए भी देष की उन्नति, एकता और अखण्डता के लिए संस्कृत और हिन्दी को राजभाषा (राष्ट्रभाषा) बनाने और षिक्षा का माध्यम बनाने का सक्रिय प्रयास करने वाले महर्शि पहने जननायक थे।

महर्षि द्वारा प्रतिपादित षिक्षा पद्धति एक सम्पूर्ण और विष्व की व्यापकतम पाठविधि है इसमें संसार की समस्त साहित्यिक, वैज्ञानिक, व्यावसायिक और षिल्पविधाओं का समावेष है। भौतिक एवं आध्यात्मिक विधाओं का अभूतपूर्व समन्वय है। जो लोग महर्शि की पाठविधि को धार्मिक या आध्यात्मिक षिक्षा तक सीमित करते हैं, वे महर्षि के साथ अन्याय करते हैं, और उनके विराट चिन्तन को संकीर्ण बनाते हैं। ऐसा करके वे महर्षि का अवमूल्यन करते हैं और उनके वेद भाष्य को भी व्यर्थ बना रहे हैं। महर्षि की षिक्षा पद्धति राष्ट्र निर्माण के साथ–साथ आदमी से 'मनुश्य' मनुश्य से 'देव' और देव से 'ऋषि' बनाने वाली पद्धति है। आधुनिक शब्दावली में कहें तो 'मानव' को 'महामानव' बनाने वाली पद्धति है।

सभ्यता एवं संस्कृति के प्रसार तथा विकास के लिए एवं वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए षिक्षा नितांत आवष्यक है। मानव जीवन का उच्चतम ध्येय इहलोक की भौतिक उन्नति पूर्वक सृष्टि और जीवन की गुत्थियों को सुलझाना और ज्ञान का आलोक फैलाना है। प्राचीन भारतीय मनीशियों ने यह तथ्य भली भाँति जान लिया था और इसलिए सुदूर अतीत में भी भारत में षिक्षा की सुन्दर व्यवस्था दृश्टिगोचर होती है। प्राचीन षिक्षा प्रणाली की उपादेयता के कारण ही भारत का समस्त प्राचीन तथा विषाल वाड्.मय इतना सुरक्षित और समृद्ध बना रह सका, तथा भारतीय जीवन सुसंस्कृत बन पाया। संसार की किसी भी विद्या का ज्ञान प्राप्त करने का साधन ही षिक्षा है। षिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति, समाज या राष्ट्र में विद्यमान सहज मौलिक स्वरूप का प्रस्फुटीकरण सम्भव होता है। जिस प्रकार खान की गहराई से निकला खनिज हीरे का पत्थर भली–भाँति तरासने पर ही बहुमूल्य हीरे के रूप में प्राप्त होता है, उसी प्रकार जड़ एवं अज्ञानी मानव भी षिक्षा प्राप्त कर सम्मानीय व्यक्ति बनता है।

महर्षि दयानन्द की आर्शपाठविधि में संसार की समस्त आध्यात्मिक एवं भौतिक सच्यविधाओं का समावेष है यह दोनों प्रकार की षिक्षाओं को अर्जित कराती है। इसकी महानता, व्यापकता और गम्भीरता इस विषय में है कि महर्षि इस पाठविधि के अंतर्गत मनुष्यमात्र को "पृथ्वी से लेकर परमेश्वरपर्यन्त" या "परमाणु से लेकर परमेश्वरपर्यन्त" अधिक से अधिक सत्यविधाओं का ज्ञान प्राप्त करने का निर्देष देते हैं। संसार में ऐसी व्यापक अन्य कोई पाठविधि नहीं है। यह एक सनातन पाठविधि है। महर्षि ने इस पाठविधि को सार्वभौमिक रूप से मानवमात्र के हित के लिए सर्वदा उपयोगी माना है। इस पाठविधि की पुनः प्रतिष्ठा में महर्षि के महान लक्ष्य थे–

1. सारे संसार में सनातन एकमत 'वेदमत' की स्थापना।

2. सनातन धर्म 'वैदिक धर्म' का प्रचलन।
3. सनातन और मूल भाषा 'संस्कृत भाषा' का अध्ययन–अध्यापन प्रवर्तित करना, जिससे संसार के लोग मत–मतान्तरों के मत भेदों, भाषाई झगड़ों पारस्परिक कलहों कुरीतियों, अन्धविष्वासों, अन्यायों अत्याचारों को छोड़कर एक परिवार की तरह रहें और धार्मिक बनकर सुख–षान्तिमय जीवन बितायें संसार में डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, अधिकारी, नेता बनना आसान है। सबसे कठिन है मनुष्य को 'मनुष्य' बनाना इसलिए यह पाठविधि मनुष्य निर्माण के जीवन मूल्यों पर विषेश बल देती है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार "दयानन्द सरस्वती आधुनिक भारत के एक महान पथ प्रदर्षक थे।" वेदों में आस्था होने के कारण उन्होने वेदों की तरफ लौटो का नारा दिया। उन्होंने सम्पूर्ण देष का भ्रमणकर हिन्दू धर्म का प्रचार किया तथा विभिन्न विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। वह संस्कृत के महान विद्वान थे। स्वामी दयानन्द का युगान्तकारी, अद्वितीय और कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाष सन् 1874 में लिखा गया। इस ग्रंथ ने लाखों लोगों के जीवन में अदभुत क्रान्ति की है। सत्यार्थ प्रकाष इतना लोकोपकारी है कि इस ग्रंथ का पाठ करने वाला और इसके अनुकूल आचरण करने वाला व्यक्ति निष्चय ही अपनी जीवन यात्रा में सफल होगा। महर्षि का देहावसान अकस्मात ही हो गया था उनके षिष्य व अनुयायी यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि उन जैसा बाल ब्रह्मचारी और सिद्ध योगी इतनी जल्दी इस संसार से विक्षुब्ध हो जायेगा, यह आर्यसमाज के लिए वज्रपात के समान था जिसके कारण आर्य सामाजियों में निराषा का संचार हो गया था, पर यह दषा देर तक नहीं रही, प्रत्येक आर्य समाजी ने यह अनुभव करना आरम्भ कर दिया कि महर्षि के मिषन को आगे बढाना उसका कर्तव्य है, उनमें उत्तरदायित्व और कर्तव्य पालन की भावना विकसित हुई और वह अपने महर्षि का उत्तराधिकारी समझने लगे। महर्षि द्वारा भारत में एक नये युग का सूत्रपात किया गया। वेदषास्त्रों में जो सत्य ज्ञान विद्यमान था, उसे उन्होने सर्वसाधारण की भाषा में जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया था अब हर किसी के लिए धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझना और सत्य का निर्णय कर सकना सम्भव हो गया अब उन्हे धर्म के ज्ञान के लिए पण्डितों पर निर्भर करने की आवष्यकता नही रह गयी थी। अब गुरू अथवा पथ–प्रदर्षक के बिना भी आर्य लोग महर्षि के उद्देष्यो की पूर्ति के लिए कटिबद्ध हो गये।

सन् 1919 ई तक भारतवर्ष में जन–जागरण के जो भी आन्दोलन चले उनका सबका नेतृत्व मुख्य रूप से आर्य समाज और आर्य समाजियों ने किया समाज सुधार भारतीय संस्कृति से प्रेम, स्वदेषी का प्रचार, विदेषी शासन के प्रति असंतोष और विरोध, भारतीय भाषाओं के प्रति प्यार, स्त्रियों और अछूतों की स्थिति में सुधार, उनके प्रति समानता का व्यवहार, इन सारे कार्यक्रमों के प्रमुख संचालक के रूप में आर्य समाज ही था। इसलिए विद्वानों ने कृतज्ञतापूर्वक यह बात स्वीकार की है कि महात्मा गाँधी यदि राष्ट्रपिता है तो स्वामी दयानन्द राष्ट्रपितामह।

स्वामी दयानन्द द्वारा खीची ज्योति रेखा देषभक्ति तथा आध्यात्मावाद के मार्ग पर आज तक भारतवासियों का पथ प्रदर्षन कर रही है। आर्य समाज तो देष के आध्यात्मिक और सामाजिक पुर्नजागरण के लिए उनकी व्याकुलता का एक स्मारक ही है। अपने देषवासियों के भौतिक स्तर और नैतिक गठन को उन्नत करने के लिए उनका योगदान अद्वितीय था। पष्चिमी संस्कृति के बाढ़ को रोककर और भारतीय सभ्यता की सूखी नसों में नया रक्त संचारित कर उन्होने भारतीयों के हृदय में नई आषा जगा दी थी और उन्हे वैदिक सभ्यता के उत्तराधिकारी होने पर गर्व करना सिखाया था, क्योंकि उनके अनुसार वह मानव जाति की सर्वोच्च सांस्कृतिक उपलब्धि थी। इस दिषा में जिस सीमा तक स्वामी दयानन्द ने प्रयास किया और सफलता भी प्राप्त की, उस सीमा तक अन्य किसी ने भी नहीं– जिस कारण भी इतिहास में उनका एक विषिष्ट स्थान रहेगा। उनके व्यक्तित्व की एक अद्वितीय बात यह है कि एक साथ ही वह संत और सांसारिक दोनों थें। यह विषेशता उनके बाद महात्मा गाँधी के ही अदंर पाई गई।

महर्षि दयानन्द अपने काल की सड़ी–गली समाज व्यवस्था और धर्मांधता को चुनौती देने और अन्याय तथा विषमता के, कितने गढ़ो को ढ़हाने के महान कार्य वह इसलिए कर पाए क्योंकि अपने विष्वासों के प्रति उनकी दृढ आस्था थी। कई बातों में अपने समकालीन विचारकों के साथ उनका विरोध था और सत्य को जैसा उन्होने देखा और समझा था उसका वह पूरी निष्ठा से पालन करते थे। अरविन्द घोष ने स्वामी दयानन्द के बारे में कहा था कि वह 'आलोक के सैनिक हैं, ईष्वरिय जगत के योद्धा हैं, मनुश्यों और संस्थाओं के मूर्तिकार हैं, और भौतिक तथा आध्यात्मिक तत्वों के बीच छिड़ने वाले संघर्श के विजेता हैं, और साथ ही एक ऐसे मानव है जिनकी आत्मा में ईष्वर का निवास है ऑखों में दूर का स्वप्न है और हाथों में जीवन शीला को कांट छाँटकर उस स्वप्न के अनुरूप एक प्रतिमा गढ़ डालने की शक्ति है।

सन्दर्भ

(1) जोशी डॉ अवनीन्द्र कुमार, उत्तराखण्ड के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुर्नजागरण में आर्यसमाज तथा रामकृष्ण मिशन का योगदान, पृश्ठ संख्या 26,1989, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
(2) मल्होत्रा डॉ0 भान्ता, स्वामी दयानन्द के राजनैतिक विचार, पृश्ठ संख्या 13, 2011, कल्पना प्रकाशन जहाँगीर पुरी, दिल्ली।
(3) नागोरी डॉ0 एस. एल., भारत में राष्ट्रीयता का विकास, पृश्ठ संख्या 1, 1994, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा0लि0, जयपुर।
(4) विद्यालंकार सत्यकेतु, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास, पृश्ठ संख्या 18, 1994, श्री अमिताभ रंजन सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली।
(5) चोपड़ा डॉ (श्रीमती) मधु, भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में आर्य समाज का योगदान, पृश्ठ संख्या 42, 2006, सत्यम पब्लिकेशन हाउस उत्तम नगर, नई दिल्ली।
(6) कुमार डॉ सुरेन्द्र, महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा पद्धति, प्राक्कथन से, 2004, वैदिक अनुसंधान सदन सत्य सनातन वेद मन्दिर आश्रम, नई दिल्ली।
(7) गोयल डॉ प्रीति प्रभा, भारतीय संस्कृति, पृश्ठ संख्या 105, 2000, राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजती गेट, जोधपुर (राजस्थान)।
(8) विद्यालंकार डॉ0 सत्यकेतु, आर्य समाज का इतिहास, द्वितीय भाग, पृश्ठ संख्या 42, 1984, आर्य स्वाध्याय केन्द्र, नई दिल्ली।
(9) उपाध्याय प्रो0 उमाकांत, आर्यसमाज का परिचय और प्रासंगिकता, पृश्ठ संख्या 30, 2007, आर्य समाज कलकत्ता, विधानसारणी, कलकत्ता।
(10) सिंह बी0 के0, स्वामी दयानन्द, पृश्ठ संख्या 106, दूसरा संस्करण 2006, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए 5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली।